हिन्दी कविता में स्त्री वेदना की अभिव्यक्ति

डॉ. संधया गर्ग,

एसोसिएट प्रोफेसर,

जानकी देवी मेमोरियल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

आधुनिक युग नए विमर्शों का युग है। युगों–युगों से उपेक्षित स्त्री, दलित व आदिवासी समाज आज चिन्तन के केन्द्र में हैं। यह एक सुखद स्थिति है क्योंकि समाज का विकास मुट्ठी भर साधन सम्पन्न लोगों पर अवलम्बित नहीं है। यदि वास्तविक रूप में हमें एक श्रेष्ठ राष्ट्र की कल्पना को साकार करना है तो जन–जन को साथ लेकर चलना होगा। जहाँ तक भारतीय नारी की स्थिति का प्रश्न है तो वह 'पराधीन' दलित व आदिवासी वर्ग की हो अथवा किसी उच्चवंश की 'सपनेहुँ सुख नाही' की ही अधिकारी रही है।

स्त्री की दयनीय व चिन्तनीय स्थिति के लिए पुरुष की संकीर्णता व नारी की शारीरिक अक्षमता उत्तरदायी रहे हैं। स्त्री भी स्वयं को इसी सीमित दृष्टिकोण से देखने की अभ्यस्त रही है। करणीय–अकरणीय का बौद्धिक अधिकार विद्वान पुरुषों, दार्शनिकों व समाज सुधारकों का है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त इस सन्दर्भ में कहते हैं–

अबला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी।

आँचल में है दूध और आँखों में पानी।

महाकवि जयशंकर प्रसाद को वह केवल 'श्रद्धा' रूप दिखलायी देती है। वह भी इस 'श्रद्धा' देवी रूप को यथावत् रखने में तन–मन समर्पित कर 'आदर्श भारतीय नारी' का मुखौटा चढ़ाकर स्वयं को तार–तार कर देती है।

सर्वविदित है कि पुरातन साहित्य में चित्रित स्त्री वही आदर्श स्त्री है जो अपने पवित्र आंचल की छाया में आदर्श पुरुष का निर्माण करती रही है और बड़े ही सहज रूप से स्वयं के लिए पथ की बाधा, इन्द्रियासक्ति, पापिनी, ठगिनी, मायावी व नरक का द्वार जैसे उपनामों का संचय करती रही है। सीता, उर्मिला, यशोधरा, द्रौपदी, कुन्ती भारतीय नारियों की पूज्या–आराध्या बनकर पुरुष–समाज का मनोमंगल करती चली आ रही हैं। स्त्री के इसी दर्द को आधुनिक कवयित्री अनामिका ने अपनी कविता में अभिव्यक्त किया है–

लिखने की मेज़ वही है, वही आसन

पांडुलिपि वही, वही बासन...

ग्रंथ लिख रही हैं पर भामती की बेटियाँ!

आज की स्त्री जिस तरह से अपनी पीड़ा से परिचित होने लगी है, उसी तरह से स्वयं को जागृत रूप में रचने भी लगी है–

कृपा नहीं, प्रेम का प्रसाद भी नहीं लेंगी,

भामती की बेटियाँ

ग्रंथ अपने स्वयं रचेंगी

लगातार

इसी तरह

हर युग में।

यद्यपि स्त्री बदलती परिस्थितियों में अपना महत्व स्थापित कर रही है। किन्तु पुरुष समाज उसकी इस बदली हुई छवि का लाभ उठाने में विलम्ब नहीं करता। बलात्कार व घरेलू हिंसा इसी जागृति का दुष्परिणाम है। धर्म और संस्कृति की नज़र स्त्री के लिए हमेशा टेढ़ी रही, राजनीति

उसे हमेशा मोहरा बनाती रही और व्यक्ति पुरुष ने उसे कभी ड्रॉइंग रूम का सामान समझा, तो कभी बेडरूम का बिछावन। पुरुष चाहे कहीं भी हो, वह शिल्पी, साहित्यकार, व्यवसायी, मजदूर कुछ भी क्यों न हो, औरत को दबाने से बाज़ नहीं आता। स्त्री की समस्या समग्र मानवीय समस्या होने के साथ भी अपनी एक अलग और विशिष्ट समस्या भी है, औरत आधी दुनिया है, आधा हिन्दुस्तान है, फिर उसे मानवीय गरिमा से वंचित क्यों रखा गया? मैथिलीशरण गुप्त जी की 'यशोधरा' इसी अधिकार की ओर संकेत करती है–

अर्द्ध विश्व में व्याप्त शुभाशुभ मेरी भी कुछ मति है।

उसमें मेरा भी कुछ होगा, जो कुछ तुम पाओगे।

उल्लेखनीय है कि स्त्री की स्थिति सदैव शोचनीय नहीं थी। गार्गी, लोपा, मुद्रा, विश्वम्भरा घोष जैसी स्त्रियाँ अपने ज्ञान व शिक्षा के कारण प्रसिद्ध रही हैं। परन्तु उत्तरोत्तर स्त्री की स्थिति दयनीय होती चली गयी। यद्यपि पुरुष उन्नति करता चला गया किन्तु स्त्री पूर्व स्थिति से अधिक विकट समस्याओं का वहन करती चली गयी। स्पष्टतः पितृसत्ता की उदारता ने उसे ऐहिकता व दैहिकता से उबरने ही नहीं दिया। मौसमी बनर्जी स्त्री की इसी विडम्बनापूर्ण स्थिति को इन शब्दों में उतारती हैं–

पूरे घर की परिक्रमा करती
पृथ्वी ही तो है औरत
और सूर्य है पुरुष
जो औरत को सिर्फ़ नचा सकता है
अपने ही इर्द–गिर्द
और जला सकता है अपने ताप से।

धर्म व परिवार के नाम पर स्त्री को बलिवेदी पर चढ़ा देने वाला पुरुष उसके यश को नहीं पचा पाता। इसलिए मंजुला सक्सेना कहती हैं–

हर बार लगता है
मैं ही ग़लत थी
कि जब मैंने खुद को
समझदार मान लिया था
वे जब कहते हैं–
'तुम नासमझ हो।'

हिन्दी साहित्याचार्य परंपरा नारी–जाति के साथ बहुत न्याय नहीं कर पायी है। स्मृतिकार मनु का यह महावाक्य 'न स्त्री स्वातंत्रयम् अहर्ति' हिन्दी आचार्यों को भी प्रिय रहा है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपने प्रथम नारी आलेख 'जापान की स्त्रियाँ' में लिखा है– 'जापान की स्त्रियां शिक्षित हैं, पर वहां की स्त्रियां स्वतंत्र नहीं है, वे अपने पति के कुटुंबियों का बड़ा आदर करती हैं, पति को तो वे स्वामी क्या, देवता समझती हैं, हमारे देश के समान जापान में भी स्त्रियों की हर अवस्था में दूसरों के अधीन रहने की शास्त्राज्ञा है, लड़कपन में माता–पिता विवाह हो जाने पर पति और विधवा हो जाने पर पुत्र की आज्ञा में रहती हैं, वे हृदय से अपने पति की सेवा करती हैं।' क्या ऐसा प्रतीत नहीं होता कि जापानी स्त्रियों पर कसे जा रहे इस शिकंजे के माध्यम से आचार्य भारतीय स्त्रियों का भी मार्ग निर्दिष्ट कर रहे हैं। ऐसा नहीं है कि आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी नवजागरण में नारियों की शिक्षा और स्वतंत्रता के महत्व को न समझते हों किन्तु इस युगीन सवाल को वे दायरों में समेट कर ही हल करने के पक्षधर हैं। यही नहीं अपने लेख 'स्त्री शिक्षा की आलोचना' में भी वे कुछ इसी प्रकार के विचार व्यक्त करते हैं जिसमें लड़कियों की पढ़ाई–लिखाई करने के साथ–साथ उनके 'गृहिणी' व 'ब्रह्मचारिणी' बनने पर बल दिया गया है। उनकी प्रसिद्ध कविता 'सलज्जा' का यह अंश उद्धरणीय है–

निकलो प्रकोष्ठ भर जो पट से

सरका–सा कुछ जड़न तट से
लेकिन नितंब पर्यन्त पड़े
हैं मानो काले नाग अड़े
हर लेते हैं मन खड़े–खड़े।

कहना न होगा कि नवजागरण की मशाल हाथ में लेकर चलने वाले आचार्य की यह पंक्तियाँ सामंतवादी–भोगवादी संस्कृति की ही कहानी कह रही हैं। यही नहीं आचार्य द्विवेदी ने नाथूराम शंकर शर्मा व मैथिलीशरण गुप्त की भी इसी प्रकार की कविताएं प्रकाशित की थीं। 'केरल की तारा'

पीन कुश, उकसे कसे
कोमल–कड़े, छोटे बड़े

बंग महिला के लेख 'नारी शिक्षा' का विरोध करने वाले आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की पाद टिप्पणी 'कुसुम संग्रह' उनके दृष्टिकोण को भी स्पष्ट करती हैं– 'स्त्री शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है– नरम, सहिष्णु और शांत बनाना, गृहकार्यों में दक्ष करना, जो शिक्षा निर्लज्ज बनाती है, उसके हम विरोधी हैं।'

हिन्दी साहित्य के आख़िरी आचार्य थे पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी। साहित्य–आचार्यों में वे सबसे उदार, तर्कसंगत और प्रगतिशील दृष्टिकोण के आचार्य थे, परन्तु नारी–स्वतंत्रता का वे भी पूरी तरह समर्थन न कर सके। वे भी शाश्वत नारी के ही पक्षधर थे। इन्होंने लिखा है– 'परिवार के बिखरने और नष्ट होने के कारणों की जांच की जाए, तो प्रायः मिलेगा कि परिवार में किसी स्त्री का उथला और संकीर्णतायुक्त आचारण ही इसका मुख्य कारण होता है।' (धार्मिक और सच्चरित्र) नारी कुटुंब की शोभा है– तथापि कहीं–कहीं वे पुरुष वर्ग को भी लताड़ते हैं– 'यह ग़लत बात है कि स्त्रियां पुरुष को नहीं समझ सकतीं, और पुरुष स्त्रियों को नहीं समझ सकते, पर यह और भी ग़लत बात है कि स्त्री वस्तुतः वैसी ही है, जैसी स्त्री के द्वारा चित्रित है, या वैसी नहीं है, जैसी पुरुष द्वारा कल्पित है।'

स्पष्टतः उपर्युक्त दृष्टिकोण एकांगी है। जिसके परिणामस्वरूप भारतीय स्त्री ने अपने प्रति होती हिंसा के ख़िलाफ़ सामाजिक मुहिम छेड़ दी है। जिसकी सच्चाई कुछ इस तरह थी–

उसे रोने की मनाही
हँसना वर्जित
वह आदमी के दर्जे से वंचित
बोली तो 'कॉमा' लग गया
पूछा तो प्रश्नवाचक तन गया
महसूसा तो
विस्मय–बोधक उठ गया
उसने तर्क दिया
पूर्णविराम का दंड अड़ गया।
ज्ञान वर्जित, किताबें बंद
पहुँच के बाहर।

स्त्री की यह कारागार में जकड़ी स्थिति उसे आवेग से भर देती है। उसकी 'चीख़' अनामिका के शब्दों में गूँजती है–

एक चीख़ मेरे भीतर दबी है।
उसका बस चले अगर तो
मेरी पसलियाँ तोड़ती
निकल आए बाहर।

पुरुष की खोखली सच्चाई, छिनी हुई खुशी डॉ. राज बुद्धिराजा के शब्दों में अभिव्यक्त हुई है–

आज तुम कितने ख़ुश हो
तुमने मेरी ज़िन्दगी से
कुछ पल चुरा लिए थे।

'शीर्ष की टहनी' में अनामिका ने नारी–जीवन की

पूरी परिभाषा लिख दी है–

जड़ कहो हमको
मगर हम जड़ नहीं हैं
काल की बरगद जटाएँ
हमीं में आकर
सदा से लय हुई हैं
गिलहरी क्षण की
हमारे कोटरों में ही फुदकती है
शेषनाग सुधियों का
हमसे ही लिपटा है।

वास्तविकता तो यह है कि 'हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता' की तरह ही इस मुद्दे पर बात करना सहज नहीं है, क्योंकि नारी जीवन की कष्टमय गाथा कहाँ से प्रारम्भ की जाए व कहाँ उसका अन्त किया जाए सोच–समझ का सरल पहलू नहीं है क्योंकि वर्तमान भी उसे समुचित न्याय नहीं दे पाया। अभी बहुत कुछ सोचने व करने को है जिसका दायित्व साहित्यकारों पर विशेष रूप से संवेदनशील स्त्री लेखिकाओं पर है।

सहायक ग्रंथ

1. वे हमें बदल रहे हैं– राजेन्द्र यादव, संपादक बलवंत कौर
2. यशोधरा– मैथिलीशरण गुप्त
3. शृंखला की कड़ियां– महादेवी वर्मा
4. अनामिका– एक मूल्यांकन– संपादक अभिषेक कश्यप
5. हिन्दी की चर्चित कवयित्रियाँ– सं. आर. के. पंकज
6. स्त्री–मुक्ति– रमणिका गुप्ता

Copyright © 2016 *Dr. Sandhya Garg*. This is an open access refereed article distributed under the Creative Common Attribution License which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.